P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-6 * (Part-1) February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

# प्राचीन एवं नवीन संगीत शिक्षा प्रणाली : एक मूल्यांकन

**प्रतिमा गुप्ता**
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संगीत गायन विभाग,
डॉ0 भीमराव आम्बेडकर राजकीय महिला स्नात0 महाविद्यालय,
फतेहपुर, उ0.प्र0, भारत

**सारांश**

वर्तमान युग में राष्ट्र और समाज के विकास के लिए शिक्षा को अत्यावश्यक माना गया है। सम्पूर्ण समाज के शिक्षित होने से राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है। इसी कारण शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांग्रीण विकास का मार्ग प्रदर्शित हो सके। वर्तमान संगीत उच्च शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो गया है। धनोर्पाजन के योग्य हो गया है, विद्यार्थी को उपाधि तो प्राप्त हो जाती है परन्तु वह योग्य शिक्षक, कलाकार आदि नहीं बन पाता विद्यार्थी वर्षभर बड़े पाठ्यक्रम, परीक्षा, अधिक अंक और उपाधि के तनाव में ही रह जाता है संगीत साधना का ध्यान ही नहीं रहता। प्रस्तुत शोधपत्र में परम्परागत संगीत शिक्षा और वर्तमान उच्च शिक्षा के विभिन्न गुण दोषों पर प्रकाश डाला गया है।

**मुख्य शब्द :** प्राचीन, संगीत, उच्च शिक्षा, परम्परा, गुरू, शिक्षा प्रणाली, संगीत साधना, शिक्षक इत्यादि।

**प्रस्तावना**

गुरू और शिष्य का रिश्ता बेहद महत्वपूर्ण और गहरा होता है। कुछ लोग तो यह मानते हैं कि ''बिन गुरू होय न ज्ञान''। भारत में गुरू को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सन्त कबीर जैसे अक्खडी सन्त भी कहते है कि गुरू ही ईश्वर की सत्ता के बारे में व्यक्ति को अवगत कराता हैं।

''गुरू गोविन्द दोउ खडे, काके लागू पाये
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताय''

**अध्ययन का उद्देश्य**

प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीन संगीत शिक्षा और वर्तमान उच्च शिक्षा पद्धति के बीच समन्वय बना कर एक आदर्श शिक्षा पद्धति अपनाया जाय, जिससे एक उच्चकोटि का कलाकार, शिक्षक आदि बन सके।

**विषय विस्तार**

संगीत शिक्षा भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। यहॉ तक कि संगीत में बिना गुरू के संगीत शिक्षा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। भारतीय संगीत गुरूकुल पद्धति के द्वारा विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुआ। आगे चल कर घराना पद्धति की सीमाओं और मनमौजीपन तथा अनेक सामाजिक, राजनैतिक कारणों से संगीत की संस्थागत शिक्षण पद्धति की ओर विकसित हुआ। इसके शिक्षण के इतिहास को देखने से इस शिक्षण प्रणाली का बदलता ऐतिहासिक स्वरूप स्पष्ट होता है। वर्तमान संगीत शिक्षण प्रणाली में तीन प्रकार प्रचलित है प्रथमतः गुरू शिष्य परम्परा, द्वितीय निजी संस्थाओं में और तृतीय विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा।

उपरोक्त प्रणाली से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि गुरू शिष्य प्रणाली में गुरू द्वारा एक ही समय पर एक या दो शिष्यों को शिक्षा दी जाती है। दूसरी प्रणाली निजी संस्थाओं में शिक्षा दी जाती है इनका उद्देश्य विद्यार्थियों को कम पैसों में संगीत शिक्षा तथा डिप्लोमा आदि प्रदान करना है। ऐसी संस्थाओं से भी संगीत शिक्षक एवं श्रोता वर्ग तैयार होकर निकलते है जो निजीतौर पर संगीत शिक्षा ग्रहण कर संगीत का क्षेत्र बढ़ाते है इससे उनका जीवनयापन भी होता है और संगीत का प्रचार प्रसार भी होता है।

तीसरी प्रणाली विश्वविद्यालय संगीत शिक्षण प्रणाली है इसके अन्तर्गत देश के विभिन्न महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संगीत को एक विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है। इसका उद्देश्य छात्रों को कम पैसों में शिक्षा अर्जित कराना। व्यावसायिक दृष्टिकोण को सामने रखते हुए, उन्हें उपाधि भी दी जाने लगीं, इस पद्धति का उद्देश्य है कि इसके द्वारा संगीत शिक्षक भी तैयार हो सके और विवेकपूर्ण श्रोता भी।

वैदिक काल से लेकर आज तक संगीत की जो धारा बहती आ रही है, उसमें गुरूकुल पद्धति का ही सबसे बड़ा योगदान है। प्राचीन काल में गुरूकुलों में संगीत शिक्षा के अनेक प्रमाणिक उल्लेख मिलते हैं। उस समय 12 से 48 वर्ष तक के पाठ्यक्रम होते थे। शिक्षा पूर्ण करने के बाद संगीतार्थियों को संगीताचार्यों के समक्ष अपनी प्रस्तुति देनी होती थी, उत्तीर्ण होने पर उन्हें पगड़ी पहनाकर सम्मानपूर्वक उपाधि दी जाती थीं। तत्कालीन गुरूकुलों में जो शिक्षा दी जाती थी, उसे लेकर कुछ लोगों को भ्रम है कि वह एकल होती थी जबकि ऐसा नहीं है। तब भी सामूहिक शिक्षा पद्धति प्रचलित थी। अंतर सिर्फ इतना था कि शिष्यों की संख्या सीमित होती थीं, जिससे गुरूओं के लिए हर शिष्य पर ध्यान दे पाना सम्भव होता था। शिष्य अगर निष्ठावान और गुरू भक्त होते थे तो गुरू भी उदार और निस्वार्थी हुआ करते थे। आज ऐसे गुरू और शिष्य दोनों ही दुर्लभ प्रजाति के हो गये है।

मध्य युग से घरानेदार संगीत शिक्षा की नीव पड़ी इस पद्धति में अनेक गुण थे फिर भी, इस पद्धति का पतन हुआ तो सिर्फ इसलिए कि घरानों के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को सिर्फ अपने परिवार के सदस्यों तक ही सीमित रखने लगे। स्वर लगाव का तरीका, प्रस्तुतिकरण का ढ़ग, लय का चुनाव, बोलबाट का ढ़ग सब भिन्न–भिन्न होने के कारण घराने अस्तित्व में आए और संगीत की शिक्षा घरानों के नियमों व रीतियों के अनुरूप चलने लगी। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो तत्कालीन गुरूओं और उस्तादों ने अपने वंशजों के अलावा दूसरों को सिखाया ही नहीं। इसीलिए संस्थागत संगीत शिक्षा की नींव पड़ी।

20वीं शताब्दी में संगीत शिक्षा पद्धति में युगान्तकारी परिवर्तन आया। संगीत को समाज में पुनः प्रतिष्ठित करने तथा जनसामान तक पहुचने हेतु पं0 भातखण्डे व पलुष्कर जी ने जगह – जगह संगीत के विद्यालय व महाविद्यालय खोलें इसी से पाठ्यक्रम प्रकिया व उपाधि देने की प्रकिया संगीत जगत में शुरू हुई। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और भातखण्डे जी ने एक बड़े स्तर पर इसका निराकरण करने का सफल प्रयास किया। उन्होने महाविद्यालयों की स्थापना की, जिसमें 8–9 वर्ष तक का एक निश्चित पाठ्यक्रम बनाया और हर वर्ष परीक्षा लेकर उस विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाने लगा। इससे संगीत शिक्षण सुलभ हो गया। इस प्रकिया में अनेक शिष्य तैयार होने लगे तथा संगीत का प्रचार भी बड़े स्तर पर होने लगा। स्वतन्त्रता के कुछ समय पश्चात् महाविद्यालयी स्तर पर भी संगीत एक विषय के रूप में सिखाया जाने लगा, जिससे संगीत सिखने वालों की संख्या बढ़ने लगी यह एक बहुत ही आशादायक स्थिति थी।

किन्तु इस पद्धति में सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे संगीत का काफी प्रचार प्रसार होते हुए भी गुणात्मक दृष्टि से नुकसान हो रहा है। महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की स्थिति यह है कि उनके यहां प्रत्येक विषय में संगीतार्थियों की एक निश्चित संख्या होनी ही चाहिए। न होने की स्थिति में विभाग बन्द हो जाएगा और अध्यापक बेराजगार। इस समस्या का सामना करने के लिए उन विद्यार्थियों का नामांकन भी कर लिया जाता है जो संगीत में या तो रूचि नहीं रखते या फिर जिन्हें संगीत का थोडा भी ज्ञान न हो। ये छात्र–छात्राएँ बी0ए0 में सरगम और अलंकार सीखना, या अपने वाद्ययत्रों पर हाथ रखना सीखते है।

वर्तमान में वैसे तो उच्च शिक्षा जगत में सभी विषयों का स्तर गिरा है, परन्तु संगीत शिक्षण के क्षेत्र में प्रदर्शन कला होने के नाते कुछ अधिक दिखाई दे रहा है। संगीत की बारीकियॉ जो सिर्फ गुरू के सान्निध्य में ही बैठकर सीखी जा सकती है, वे इतने कम समय में सिर्फ कक्षा में बैठकर नहीं सीखी जा सकती। अतः धीरे – धीरे संगीत का स्तर गिरने लगा। गुरूकुल पद्धति से सीखकर जिस उच्च कोटि का कलाकार तैयार होता था वैसे कलाकार आजकल बहुत कम दिखाई देते है।

संगीत की उच्च शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए यह आवश्यक है कि योग्य विद्यार्थियों का ही चयन किया जाए। किसी योग्य गुरू से तीन–चार वर्षो तक संगीत सीखें बिना, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर संगीत सीखे बिना स्नातक स्तर पर छात्र–छात्राओं को संगीत विषय चुनने की पात्रता नहीं होनी चाहिए। स्नातकोत्तर स्तर पर विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए कड़े नियम बनाए जाए, जिससे योग्य कलाकारों का निर्माण हो। कक्षाओं की अवधि भी 40–45 मिनट के अवधि की व्यवस्था न होकर उसकी अवधि कम से कम एक या दो घन्टे तो होनी ही चाहिए। क्योंकि गुरू शिष्य परम्परा में संगीत की शिक्षा में नित्य प्रति आठ घन्टे तक अध्ययन–अध्यापन होता रहा है।

संगीत शिक्षा अब रोजगार मूलक होनी चाहिए। जो विद्यार्थी जिस क्षेत्र में जाना चाहता है जैसे कलाकार, संगीतशास्त्री आदि उसका पाठ्यक्रम व शिक्षण व्यवस्था भिन्न भिन्न होना चाहिए तथा महाविद्यालयों – विश्वविद्यालयों में ऐसे ही पाठ्यक्रम मान्य होने चाहिए। पाठ्यक्रमों के अनुसार ही विषय विशेषज्ञों द्वारा ही शिक्षा देनी चाहिए। तभी गुणवत्ता आ सकेगी। पाठ्यक्रम में राग संख्या के जगह प्रस्तुतीकरण के स्तर को बढ़ाने से कुछ सीमा तक अच्छे परिणाम मिल सकते है।

संगीत– विद्या को प्राप्त करने के लिए गुरू और शिष्य में परस्पर श्रद्धा, विश्वास, ध्येयनिष्ठा, प्रेम–सोहार्द्र, लगन और साधना का सामंजस्य होना अति आवश्यक है। छात्रों का उत्साह बढ़ाने वाले, उन्हें योग्य मार्गदर्शन करने वाले तथा उनके मन में डिग्री–प्रेम से अधिक कला प्रेम जाग्रत करने वाले शिक्षकों की आवश्यकता है।

संगीत के लिए एक सुविचारित शिक्षा नीति का होना परम आवश्यक है। यह बहुत ही दुखद तथ्य है कि आजादी के इतने वर्षो बाद भी हमारे संगीत शिक्षा की कोई नीति नहीं है। जबकि देश का सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न' से अंलकृत संगीतज्ञ भी संगीत से है।

**निष्कर्ष**

वर्तमान काल की परिस्थितियों आवश्यकताओं के अनुरूप अब एक ऐसी सुसंगठित पद्धति की आवश्यकता है जो गुरूकूल और घरानें की विशेषताओं पर आधारित हो जो शिक्षण सम्बन्धी नये विकास को समेटती हो, जो नये प्रयोगों की छूट दे, और जो शास्त्रीय परम्परा की लुप्त

विधाओं की पुर्नरचना को प्रोत्साहित करें तथा इन गुणों को अपनाते हुए संगीत शिक्षा को विश्वविद्यालयीय शिक्षा के लाभ और सुविधाएँ प्राप्त हो। जिससे शिक्षित कलाकार का निर्माण हो सके। वर्तमान समय में जब संगीत की उच्च शिक्षा को अन्य विषयों के समान ही मान्यता प्राप्त है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इसके क्रियात्मक एवं रचनात्मक पक्ष की सीमा को ध्यान में रखकर प्राचीन वैयक्तिक शिक्षण, दोनों के श्रेष्ठ तत्व उपलब्ध कर समन्वित किए जाए, ताकि व्यावाहारिक दृष्टि से गुणवत्ता के साथ ही ये हमारी परम्परा को भी समृद्ध कर सके।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

*श्रीखण्डे डॉ0 सुरेश गोपाल, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन की शिक्षा प्रणाली, अभिषेक पब्लिकेशन्ज, चण्डीगढ प्रथम संस्करण 1993 पेज न0 225,230*

*सक्सेना डॉ0 मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर , हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ, प्रथम संस्करण 1990 पेज न0 74,105,123*

*संगीत कला विहार, जून 2008 पेज न0 11*

*संगीत कला विहार, दिसम्बर 2007 पेज न0 35*

*संगीत कला विहार, मार्च 2011 पेज न0 13*

*संगीत कला विहार, दिसम्बर 2013 पेज न0 36*